सीमाएँ

मोहन राकेश

हिन्दी ADDA

सीमाएँ

https://www.hindiadda.com/seemaen/

इतना बड़ा घर था, खाने-पहनने और हर तरह की सुविधा थी, फिर भी उमा के जीवन में बहुत बड़ा अभाव था जिसे कोई चीज़ नहीं भर सकती थी।

उसे लगता था वह देखने में सुन्दर नहीं है। वह जब भी शीशे के सामने खड़ी होती तो उसके मन में झुँझलाहट भर आती। उसका मन होता कि उसकी नाक लम्बी हो, गाल ज़रा हल्के हों, ठोड़ी आगे की ओर निकली हो और आँखें थोड़ा और बड़ी हों। परन्तु अब यह परिवर्तन कैसे होता? उसे लगता कि उसके प्राण एक ग़लत शरीर में फँस गये हैं जिससे निस्तार का कोई चारा नहीं, और वह खीझकर शीशे के सामने से हट जाती।

उसकी माँ हर रोज़ गीता का पाठ करती थी। वह बैठकर गीता सुना करती थी : कभी माँ कथा सुनने जाती तो वह साथ चली जाती थी। रोज़-रोज़ पंडित की एक ही तरह की कथा होती थी-'नाना प्रकार कर-करके नारद जी कहते भये हे राजन्...' पंडित जो कुछ सुनाता था, उसमें उसकी ज़रा भी रुचि नहीं रहती थी। उसकी माँ कथा सुनते-सुनते ऊँघने लगती थी। वह दरी पर बिखरे हुए फूलों को हाथों में लेकर मसलती रहती थी।

घर में माँ ने ठाकुरजी की मूर्ति रखी थी जिसकी दोनों समय आरती होती थी। उसके पिता रात को रोटी खाने के बाद चौरासी वैष्णवों की वार्ता में से कोई वार्ता सुनाया करते थे। वार्ता के अतिरिक्त जो चर्चा होती, उसमें सतियों के चरित्र और दाल-आटे का हिसाब, निराकार की महिमा और सोने-चाँदी के भाव, सभी तरह के विषय आ जाते। वह पिता द्वारा दी गयी जानकारी पर कई बार आश्चर्य प्रकट करती, पर उस आश्चर्य में उत्साह नहीं होता।

उसे मिडिल पास किये चार साल हो गये थे। तब से अब तक वह उस सन्धि-काल में से गुज़र रही थी जब सिवा विवाह की प्रतीक्षा करने के जीवन का और कोई ध्येय नहीं होता। माता-पिता जिस दिन भी विवाह कर दें, उस दिन उसे पत्नी बनकर दूसरे घर में चली जाना था। यह महीने-दो महीने में भी सम्भव हो सकता था, और दो-तीन साल और भी प्रतीक्षा में निकल जा सकते थे।

उमा कुछ कर नहीं रही थी, फिर भी अपने में व्यस्त थी। बैठी थी, लेट गयी। फिर उठकर कमरे में टहलने लगी। फिर खिड़की के पास खड़ी होकर गली की ओर देखने लगी और काफ़ी देर तक देखती रही।

सवेरे रक्षा उसे सरला के ब्याह का बुलावा दे गयी थी। वह कह गयी थी कि वह साढ़े पाँच बजे तैयार रहे, वह उसे आकर ले जाएगी। पहले रक्षा ने उसे बताया था कि सरला का किसी लडक़े से प्रेम चल रहा है जो उसे चिट्ठियों में कविता लिखकर भेजता है और जलती दोपहर में कॉलेज के गेट के पास उसकी प्रतीक्षा में खड़ा रहता है। आज वह प्रेम फलीभूत होने जा रहा था।

प्रेम...यह शब्द उसे गुदगुदा देता था। राधा और कृष्ण के प्रेम की चर्चा तो रोज़ ही घर में हुआ करती थी। परन्तु उस दिव्य और अलौकिक प्रेम के बख़ान से वह विभोर नहीं होती थी। परन्तु यह प्रेम...उसकी सहेली का किसी लडक़े से प्रेम...यह और चीज़ थी। इस प्रेम की चर्चा होने पर मलमल के जामे-सा हल्का आवरण स्नायुओं को छू लेता था।

"उम्मी!" माँ खिड़की में उसके पास आकर खड़ी हो गयी।

उमा ने ज़रा चौंककर माँ की ओर देखा।

"तुझे अभी तैयार नहीं होना?" माँ ने पूछा।

"अभी तैयार हो जाऊँगी, ऐसी क्या जल्दी है?" और उमा की आँखें गली की ओर ही लगी रहीं।

"जाना है तो अब कपड़े-अपड़े बदल ले," माँ ने कहा, "बता, साड़ी निकाल दूँ कि सूट?"

"जो चाहे, निकाल दो..." उमा अन्यमनस्क भाव से बोली।

"तेरी अपनी कोई मर्ज़ी नहीं?"

"उसमें मर्ज़ी का क्या है? जो निकाल दोगी पहन लूँगी।"

उसे अपने शरीर पर साड़ी और सूट दोनों में से कोई चीज़ अच्छी नहीं लगती थी। कीमती-से-कीमती कपड़े उसके अंगों को छूकर जैसे मुरझा जाते थे। रक्षा सवेरे साधारण खादी के कपड़े पहनकर आयी थी, फिर भी बहुत सुन्दर लग रही थी। उमा खिड़की से हटकर शीशे के सामने चली गयी। मन में फिर वही झुँझलाहट उठी। आज वह इतने लोगों के बीच जाकर कैसी लगेगी? माँ ने सुबह मना कर दिया होता तो कितना अच्छा था? अब भी यदि वह रक्षा से ज्वर या सिरदर्द का बहाना कर दे...?

वह अपने मन की दुर्बलता को तरह-तरह से सहारा दे रही थी। कभी चाहती कि रक्षा उसे लेने आना ही भूल जाए। कभी सोचती कि शायद यह सपना ही हो और आँख खुलने पर उसे लगे कि वह यूँ ही डर रही थी। मगर सपना होता तो कहीं से टूटता या बदलता। सुबह से अब तक इतना एकतार सपना कैसे हो सकता था?

माँ ने सफ़ेद साटिन का सूट लाकर उसके हाथ में दे दिया। उमा ने उसे शरीर से लगाकर देखा। उसे अच्छा नहीं लगा। मगर उसका नया सूट वही था। उसने सोचा कि एक बार पहनकर देख ले, पहनने में क्या हर्ज़ है?

सूट की फिटिंग बिलकुल ठीक थी। उसे लगा कि उससे उसके अंगों का भद्दापन और व्यक्त हो आया है। यदि उसकी कमर कुछ पतली और नीचे का हिस्सा ज़रा भारी होता तो ठीक था। यदि उसकी होश में ही उसका पुनर्जन्म हो जाए और उसे रक्षा जैसा शरीर मिले, तो वह इस सूट में कितनी अच्छी लगे?

माँ वह लकड़ी का डिब्बा ले आयी जो कभी उसकी फूफी ने उपहार में दिया था। उसमें पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक और नेलपालिश, कितनी ही चीज़ें थीं। उसने उन्हें कई बार सूँघा तो था पर अपने शरीर पर उनके प्रयोग की कल्पना नहीं की थी। उसने माँ की ओर देखा। माँ मुस्करा रही थी।

"यह किसके लिए लायी हो?" उमा ने पूछा।

"तेरे लिए और किसके लिए?" माँ बोली, "ब्याह वाले घर नहीं जाएगी?"

"तो उसके लिए इस सबकी क्या ज़रूरत है?"

"वैसे जाना लोगों में बुरा लगेगा। घड़ी-दो घड़ी की ही तो बात है।"

"लालाजी ने देख लिया तो...?"

"वे देर से घर आएँगे। तू लौटकर साबुन से मुँह धो लेना।"

"परन्तु...!"

उसके मन का 'परन्तु' नहीं निकला। पर वह मना भी नहीं कर सकी। उसकी इच्छा न हो, ऐसी बात नहीं थी, पर मन में आशंका भी थी। वह उन चीज़ों को अनिश्चित-सी देखती रही। माँ दूसरे कमरे में चली गयी।

लिपस्टिक उसने होंठों के पास रखकर देखी। फिर मन हुआ कि हल्का-सा रंग चढ़ाकर देख ले। चाहेगी तो पल-भर में तौलिये से पोंछ देगी।

ज्यों-ज्यों होंठों का रंग बदलने लगा, उसके मन की उत्सुकता बढ़ने लगी। तौलिये से होंठ छिपाए हुए वह जाकर खिड़की के किवाड़ बन्द कर आयी। फिर शीशे के सामने आकर वह तौलिये से होंठों को रगडने़ लगी। उससे रंग कुछ फीका तो हो गया पर पूरी तरह नहीं उतरा। फिर तौलिया रखकर उसने पाउडर की डिबिया उठा ली। मन ने प्रेरणा दी कि तौलिया है, पानी है, एक मिनट में चेहरा साफ़ हो सकता है, और वह पफ से चेहरे पर पाउडर लगाने लगी।

पफ रखकर जब उसने चेहरे को हाथ से मलना आरम्भ किया तभी सीढिय़ों पर पैरों की खट्-खट् सुनाई दी। इससे पहले कि वह तौलिये में मुँह छिपा पाती, रक्षा दरवाज़ा खोलकर कमरे में आ गयी। उमा के लिए अपना आप भारी हो गया।

"तैयार हो गयी, परी रानी?" रक्षा ने मुस्कराकर पूछा।

परी रानी शब्द उमा को खटक गया। उसे लगा कि उस शब्द में चुभती हुई चोट है।

"साढ़े पाँच बज गये?" उसने कुंठित स्वर में पूछा।

"अभी दस-बारह मिनट बाकी हैं," रक्षा ने कहा।

"मैं समझ रही थी अभी पाँच भी नहीं बजे।" उमा ने किसी तरह मुस्कराकर कहा। उसकी आँखें रक्षा के शरीर पर स्थिर हो रही थीं। आसमानी साड़ी के साथ हीरे के टॉप्स और सोने की चूडिय़ाँ पहनकर रक्षा बहुत सुन्दर लग रही थी।

माँ ने अन्दर से पुकारा तो उमा को जैसे वहाँ से हटने का बहाना मिल गया। अन्दर गयी तो माँ वह मखमली डिबिया लिये खड़ी थी जिसमें सोने की ज़ंजीर रखी रहती थी। वह ज़ंजीर माँ के ब्याह में आयी थी और उमा के ब्याह में दी जाने के लिए सन्दूक में सँभालकर रखी हुई थी। माँ ने ज़ंजीर उसके गले में पहना दी तो उमा को बहुत अजीब लगने लगा। रक्षा उधर आवाज़ दे रही थी इसलिए वह माँ के साथ बाहर कमरे में आ गयी। उसके बाहर आते ही रक्षा ने चलने की जल्दी मचा दी।

जब वह चलने लगी तो माँ ने पीछे से कहा, "रात को मन्दिर में उत्सव भी है। हो सके तो आती हुई दर्शन करती आना।"

वह सीढिय़ों से उतरकर रक्षा के साथ गली में चलने लगी।

ब्याह वाले घर में पहुँचकर रक्षा बहुत जल्दी इधर-उधर लोगों में उलझ गयी। वह यहाँ से वहाँ जाती, वहाँ से उसके पास और उसके पास से और किसी के पास। उमा सोफे के एक कोने में सिमटकर बैठ रही। जब उसकी रक्षा से आँख मिल जाती तो रक्षा मुस्कराकर उसे उत्साहित कर देती। जब रक्षा दूर चली जाती तो उमा बहुत अकेली पडऩे लगती। वह बत्तियों से जगमगाता हुआ घर उसके लिए बहुत पराया था। वहाँ फैली हुई महक अपनी दीवारों की गन्ध से बहुत भिन्न थी। ख़ामोश अकेलेपन के स्थान पर चारों ओर खिलखिलाता हुआ शोर सुनाई दे रहा था। वह एक प्रवाह था जिसमें निरन्तर लहरें उठ रही थीं। पर वह लहरों में लहर नहीं, एक तिनके की तरह थी-अकेली और एक ओर को हटी हुई।

रक्षा कुछ और लड़कियों को लिये हुए बाहर से आयी और उसने उन्हें उसका परिचय दिया, "यह हमारी उमा रानी है,तुम लोगों की तरह चंट नहीं है, बहुत सीधी लडक़ी है।"

उमा को इस तरह अपना परिचय दिया जाना अच्छा नहीं लगा, फिर भी वह मुस्करा दी। रक्षा दूसरी लड़कियों का परिचय कराने लगी, "यह कान्ता है, इंटर में पढ़ती है। अभी-अभी इसने कॉलेज के नाटक में जूलिएट का अभिनय किया था, बहुत अच्छा अभिनय रहा।...यह कंचन है, आजकल कला भवन में नृत्य सीख रही है।...और मनोरमा...यह कॉलेज के किसी भी लडक़े को मात दे सकती है...

परिचय पाकर उमा अपने को उनसे और भी दूर अनुभव करने लगी। उन सबके पास करने के लिए अपनी बातें थीं।'वह', 'उस दिन', 'वह बात', आदि संकेतों में से वे बरबस हँस देती थीं। उमा के विचार कभी फरश पर अटक जाते,कभी छत से टकराने लगते और कभी सफ़ेद सूट पर आकर सिमट जाते।

रक्षा कान्ता को एक फोटो दिखा रही थी। और कह रही थी कि इस लडक़े से ललिता की शादी हो रही है।

"अच्छी लाटरी है!" कान्ता तस्वीर हाथ में लेकर बोली, "एक दिन की भी जान-पहचान नहीं, और कल को ये पतिदेव होंगे और ललिता जी 'हमारे वे' कहकर इनकी बात करेंगी-धन्य पतिदेव!"

कान्ता की बात पर और सबके साथ उमा भी हँस दी। पर वह बेमतलब की हँसी थी, उसे हँसने के लिए आन्तरिक गुदगुदी का ज़रा भी अनुभव नहीं हुआ था। उसके स्नायु जैसे जकड़ गये थे। खुलना चाहते थे, लेकिन खुल नहीं पा रहे थे।

बात में से बात निकल रही थी। कभी कोई बात स्पष्ट कही जाती और कभी सांकेतिक भाषा में। सहसा बात बीच में ही छोडक़र रक्षा एक नवयुवक को लक्षित करके बोली, "आइए, भाई साहब! लाये हैं आप हमारी चीज़?"

"भई, माफ़ कर दो," नवयुवक पास आता हुआ बोला, "तुम्हारी चीज़ मुझसे गुम हो गयी।"

"हाँ, गुम हो गयी! साथ आप नहीं गुम हो गये?" रक्षा धृष्टता के साथ बोली।

"अपना भी क्या पता है?" नवयुवक ने कहा, "इन्सान को गुम होते देर लगती है?"

नवयुवक लम्बा और दुबला-पतला था और देखने में काफ़ी अच्छा लग रहा था। उमा ने एक नज़र देखकर आँखें हटा लीं।

"चलो उधर, सरला बुला रही है," नवयुवक ने फिर रक्षा से कहा।

"उससे कहो, मैं अभी आती हूँ," रक्षा बोली।

"चलो भी, अभी आती हूँ।" कहकर उसने रक्षा का हाथ पकडक़र खींचा। रक्षा उसके साथ चली गयी। कान्ता कंचन को बताने लगी कि उस लडक़े का नाम मोहन है और वह सरला का चचेरा भाई है। एम.ए. फाइनल में पढ़ रहा है। उमा ने इससे अधिक कुछ सुनने की आशा की। पर कान्ता वह बात छोडक़र मनो के फीते की प्रशंसा करने लगी।

मनो का फीता बहुत सुन्दर था। उसके बालों में सोने का क्लिप और नीले रंग के फूल भी बहुत अच्छे लग रहे थे। उसके ब्लाउज़ का पारदर्शक कपड़ा बिजली के प्रकाश में किरणें छोड़ रहा था। कंचन मनो के कन्धे पर झुककर उसके कान में कुछ फुसफुसाने लगी। उमा की आँखें झट दूसरी ओर को हट गयीं।

उसके सामने जो दो स्त्रियाँ बैठी थीं, वे उसी की ओर देखकर कोई बात कर रही थीं। उमा को लगा कि वे उसी की बात कर रही हैं-शायद उसके कपड़ों की आलोचना कर रही हैं। उसने बाँहें समेट लीं और हाथ से गले की ज़ंजीर को सहलाने लगी।

"बाहर चल रही हो?" मनो ने उससे पूछा।

"रक्षा किधर गयी है?" यह पूछकर उमा और संकुचित हो गयी।

"बाहर ही गयी है, अभी देखकर भेजती हूँ," कहकर मनो कंचन और कान्ता के साथ उठ खड़ी हुई और वे सब बाहर चली गयीं।

उमा फिर बिलकुल अकेली पड़ गयी तो उसके मन का बोझ बढऩे लगा। वहाँ इतने अपरिचित लोगों की उपस्थिति,चहल-पहल और सजावट, सब कुछ उसे बेग़ाना लग रहा था। यदि सहसा उसे सुनसान अँधेरे जंगल में पहुँचा दिया जाता, जहाँ चारों ओर बिलकुल नीरवता होती तो उसे निश्चय ही अब से अच्छा लगता। परन्तु वहाँ उस चुलबुलाहट,छेड़छाड़ और दौड़-धूप में उसकी तबीयत उखड़ रही थी...।

सहसा कमरा कहकहों से गूँज उठा। उमा चौंक गयी। कोई ऐसी बात हुई थी जिस पर सब लोग हँस रहे थे। उसने सोचा कि वह भी हँस दे परन्तु वह चुप रही कि हो सकता है उसी के बारे में कोई बात हुई हो...। लेकिन जब हँसी का स्वर बैठ गया तो उसे अपने चुप रहने के लिए खेद हुआ क्योंकि उसकी चुप्पी सबने लक्षित की थी। वह पश्चात्ताप से भर गयी।

बाजों का स्वर दूर से पास आ रहा था, इससे लोगों ने अनुमान लगाया कि बारात आ रही है। कमरे की हलचल बढ़ गयी। उमा को उस समय बहुत ही व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगा। उसके कानों में बाजे का स्वर गूँज रहा था और आसपास कुछ वाक्यों के टुकड़े मँडरा रहे थे।

-आओ बाहर।

-माधवी, ओ माधवी!

-हाय, मेरा लाल रूमाल!

-रोती है तो रोने दे।

-नीना रानी, ले बिस्कुट।

-मौली मिल गयी, पंडित जी?

-देख, पीछे कितने लोग हैं?

-रूई, फूल, धूप, मेवा।

-मोहनलाल! मोहनलाल।

-देखा, कैसा है?

-कुछ लम्बा लगता है।

-आ मिट्ठू, आ बेटा।

-जान ले ले तू बाबूजी की!

एक-एक करके सब लोग कमरे से बाहर चले गये। कुछ अपने-आप आग्रह से चले गये और कुछ को दूसरे आकर अनुरोध के साथ ले गये। केवल उमा अपने अकेलेपन में घिरी हुई वहाँ बैठी रह गयी।

पहले क्षण तो उसे अकेली रह जाने में अच्छा लगा। दूसरे क्षण उपेक्षित होने की टीस का अनुभव हुआ। फिर आत्मीयता दीप्त हुई कि उसे भी बाहर जाना चाहिए। परन्तु अगले क्षण वह इस अनुभूति से मुरझा गयी कि बाहर जाकर भी वह अकेली होगी...उस भीड़ में उसके होने-न-होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

बैंड का स्वर बहुत पास आ गया था और बाहर कोलाहल बढ़ रहा था। अन्दर उमा के लिए समय के क्षण लम्बे होते जा रहे थे और उसके हृदय की धडक़न मद्धम पड़ रही थी। तभी अचानक रक्षा बाहर से वहाँ आ गयी।

"क्यों रानी, रूठ गयी है क्या?" रक्षा ने आते ही पूछा।

"नहीं, मैं..." उमा ने सिरदर्द का बहाना करना चाहा, लेकिन उसकी बात पूरी होने से पहले ही रक्षा ने उसका हाथ पकडक़र उठा दिया।

"बाहर चल, यहाँ क्यों बैठी है?" वह बोली, "बाहर अभी हम लोग दूल्हा के साथ एक तमाशा करने जा रही हैं।"

और कुछ कह सकने से पहले ही उमा बाहर भीड़ में पहुँच गयी। यहाँ कंचन, मनो और कान्ता मिल गयीं। वे सब उसे साथ सरला के कमरे में ले गयीं। सरला दुल्हिन के वेश में बिलकुल और ही लग रही थी। फूलदार जारजेट की साड़ी के साथ मोतियों के गहने उसकी गुलाब-सी त्वचा पर बहुत खिल रहे थे। सरला उसकी ओर देखकर मुस्कराई तो वह उसके होंठों की सलवटें देखती रह गयीं। सरला ने साथ कुछ शब्द भी कहे, परन्तु वे शब्द कोलाहल में उसे सुनाई नहीं दिये। वह उत्तर में यूँ ही मुस्करा दी हालाँकि अपनी वह व्यर्थ की मुस्कराहट उसके हृदय में चुभ-सी गयी...

दो घंटे बाद जब रक्षा उसे उसके घर की गली के बाहर छोड़कर आगे चली गयी तब भी उमा के हृदय में वह चुभता हुआ अनुभव उसी तरह था, जैसे कोई काँटा अन्दर टूटकर रह गया हो। वह अपनी स्थिति का निर्णय नहीं कर पा रही थी। एक तरफ़ जैसे रक्षा, सरला, कान्ता, कंचन और मनोरमा खिलखिलाकर हँस रही थीं। दूसरी तरफ़ वे दीवारें थीं, जिनमें सटी हुई खिड़की के पास सवेरे धूप आती थी और दोपहर ढलते ही अँधेरा होने लगता था और जिनके साये में पूर्णिमा और एकादशी के व्रत रखने होते थे। वह जैसे दोनों ओर से दब रही थी और टूट रही थी।

गली में आकर उसने मन्दिर की घंटियाँ सुनीं तो उसे माँ की बात याद हो आयी कि आज मन्दिर में उत्सव है। उसके पैर अनायास मन्दिर की सीढ़ियों की ओर बढ़ गये। वह अन्दर पहुँचकर स्त्रियों की पंक्ति में हाथ बाँधकर खड़ी हो गयी।

आरती समाप्त होने पर स्तोत्र पाठ आरम्भ हुआ। उमा की आँखें मूँदकर लय में शब्दों का अनुकरण करने लगी, जय सीतावर वर सुन्दर, जय जग सुख दाता। जय जय जग सुखदाता...

परन्तु मूँदी हुई आँखों के आगे रक्षा का खिलखिलाता हुआ चेहरा आ गया, फिर मोहन की बड़ी-बड़ी आँखें, और फिर एक के बाद एक कितनी ही आकृतियाँ सामने आने लगीं, व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहटें, उपेक्षा-भरी भौंहें, सोफे का खाली कोना, ज़ोर-ज़ोर से बजता हुआ बाजा...। उसने अपने आपको झटका दिया...। दीनबन्धु करुणामय, सब जग के त्राता!...फिर हिलता हुआ पर्दा,पर्दे के पीछे बिजलियाँ, बिजलियों के प्रकाश में रक्षा, मोहन, सरला और दूल्हा के खिलखिलाते हुए चेहरे।

उमा ने आँखें खोल लीं। स्तोत्र का स्वर चारों ओर गूँज रहा था। बरसों से वह इस स्वर को सुनती आयी थी, लेकिन फिर भी आज उसे यह स्वर कुछ अपरिचित-सा लग रहा था। जैसे उसके अन्तर की गहराई में कहीं कुछ थोड़ा बदल गया था।

सहसा उसकी आँखें एक जगह टकराकर लौट आयीं। भीड़ में एक नवयुवक उसकी ओर देख रहा था।

उमा के शरीर में लहू का दबाव बढ़ गया। हृदय की गति बहुत तेज़ हो गयी। उसकी आँखें केले के खंभों पर से हटकर सजी हुई सामग्री पर से फिसलती हुई फिर वहीं टकरायीं। वह अब भी उसी तरह देख रहा था।

उमा के लिए पैरों का सन्तुलन बनाये रखना कठिन हो गया। उसकी आँखें ठाकुर जी की मूर्ति पर पड़ीं और जल्दी से हट गयीं। उसके पास से कुछ लोग चलने लगे तो वह भी साथ चल दी। पुजारी से चरणामृत लेकर वह ड्योढ़ी की ओर बढ़ी। सहसा भीड़ में किसी का हाथ उससे छुआ। उमा ने घूमकर देखा। वही दो आँखें थीं...काली डोरेदार आँखें।

स्तोत्र का स्वर मशीन के घर्र-घर्र स्वर जैसा हो गया। आसपास की भीड़ पत्थर की गोपियाँ, मिट्टी के आम व कपड़े के तोते, हर चीज़ धुँधली होने लगी। आकाश बोझिल हो गया और धरती समतल नहीं रही। दिशाएँ एक-दूसरी में मिलकर ओझल होने लगीं। प्रकाश रंग बदलने लगा। वह भीड़ में कुछ यूँ हो गयी जैसे रुके हुए पानी में अस्त-व्यस्त हाथ-पैर मार रही हो। केवल एक ज्ञान था कि एक हाथ उसे छू रहा है। यहाँ बाजू के पास, यहाँ कन्धे के पास, यहाँ...।

वह बाहर से आती हुई दो स्त्रियों के साथ उलझ गयी। किसी तरह सँभलकर जब वह बाहर पहुँची तो उसे हवा का स्पर्श कुछ विचित्र-सा लगा। लहू जो तेज़ी के साथ नाडियों में सरसरा रहा था, वह अब कुछ ठंडा पडऩे लगा तो शरीर में सिहरन भर गयी। उसके कन्धे के पास उस हाथ का स्पर्श जैसे अभी तक सजीव था।

उसका मन हुआ कि वह जल्दी से घर पहुँच जाए और एक बार खिलखिलाकर हँस दे। वे असाधारण क्षण बिलकुल नई-सी अनुभूति छोड़ गये थे। यदि रक्षा उस समय उसके पास होती तो वह हँसती हुई उसके गले में बाँहें डाल देती और उसे घसीटती हुई अपने साथ घर ले जाती।

उस स्पर्श को एक बार छू लेने के लिए उमा का हाथ अपने कन्धे के उसी भाग की ओर उठ गया। वह स्पर्श जैसे वहाँ अपनी निश्चित छाप छोड़ गया था।

अचानक उसका पैर लडख़ड़ा गया और वह रुक गयी। उसका शरीर पसीने से भीग गया। अँधेरे गहरे-गहरे रंग फैल गये।

उस स्पर्श का आभास तो वहाँ था, पर सोने की ज़ंजीर गले में नहीं थी।